॥ॐ॥
॥श्री परमात्मने नमः ॥
॥श्री गणेशाय नमः॥

प्रश्नोपनिषद

विषय सूची

॥अथ प्रश्नोपनिषद ॥ 3

प्रथम प्रश्न 5

द्वितीय प्रश्न 13

तृतीय प्रश्न 19

चतुर्थ प्रश्न 25

पांचवां प्रश्न 31

छठा प्रश्न 36

शान्तिपाठ 41

॥ श्री हरि ॥

॥अथ प्रश्नोपनिषद ॥

॥ हरिः ॐ ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ॥

गुरुके यहाँ अध्ययन करने वाले शिष्य अपने गुरु, सहपाठी तथा मानवमात्र का कल्याण-चिन्तन करते हुए देवताओं से प्रार्थना करते है कि:

हे देवगण ! हम भगवान का आराधन करते हुए कानों से कल्याणमय वचन सुनें। नेत्रों से कल्याण ही देखें। सुदृढः अंगों एवं शरीर से भगवान की स्तुति करते हुए हमलोग; जो आयु आराध्य देव परमात्मा के काम आ सके, उसका उपभोग करें।

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥

जिनका सुयश सभी ओर फैला हुआ है, वह इन्द्रदेव हमारे लिए कल्याण की पुष्टि करें, सम्पूर्ण विश्व का ज्ञान रखने वाले पूषा हमारे लिए कल्याण की पुष्टि करें, हमारे जीवन से अरिष्टों को मिटाने के लिए चक्र सदृश्य, शक्तिशाली गरुड़देव हमारे लिए कल्याण की पुष्टि करें तथा बुद्धि के स्वामी बृहस्पति भी हमारे लिए कल्याण की पुष्टि करें।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

हमारे, अधिभौतिक, अधिदैविक तथा तथा आध्यात्मिक तापों (दुखों) की शांति हो।

॥ श्री हरि ॥

॥ प्रश्नोपनिषद ॥

॥अथ प्रथमः प्रश्नः॥

प्रथम प्रश्न

ॐ सुकेशा च भारद्वाजः शैब्यश्च सत्यकामः सौर्यायणी च गार्ग्यः
कौसल्यश्चाश्वलायनो भार्गवो वैदर्भिः कबन्धी कात्यायनस्ते हैते
ब्रह्मपरा ब्रह्मनिष्ठाः परं ब्रह्मान्वेषमाणा एष ह वै तत्सर्वं
वक्ष्यतीति ते ह समित्पाणयो भगवन्तं पिप्पलादमुपसन्नाः ॥ १.१॥

ओंकारस्वरूप सच्चिदानन्दघन परमात्मा के नाम का स्मरण करके उपनिषद् का आरम्भ करते हैं। भारद्वाज के पुत्र सुकेशा और शिबिकुमार सत्यकाम तथा गर्ग-गोत्र में उत्पन्न सौर्यायणी एवं कोसलदेशी निवासी आश्वलायन तथा विदर्भदेश निवासी भार्गव और कत्य ऋषि का प्रपौत्र कबन्धी। यह छः प्रसिद्ध ऋषि जो कि वेदाभ्यास के परायण और ब्रह्मनिष्ठ अर्थात् श्रद्धापूर्वक वेद में निष्ठा रखनेवाले थे। वह सभी परब्रह्म की खोज करते हुए। यह जानकर कि यह पिप्पलाद ऋषि निश्चय ही उस ब्रह्म के विषय में सारी बातें बतायेंगे। हाथ में समिधा लिये हुए भगवान् पिप्पलाद ऋषि के पास गये ॥ १॥

तान्ह स ऋषिरुवाच भूय एव तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया
संवत्सरं संवत्स्यथ यथाकामं प्रश्नान् पृच्छत यदि
विज्ञास्यामः सर्वं ह वो वक्ष्याम इति ॥ १.२॥

उन सुकेश आदि ऋषियों से वह प्रसिद्ध ऋषि-पिप्पलाद बोले- तुमलोग पुनः श्रद्धाके साथ ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए और तपस्यापूर्वक एक वर्ष तक यहाँ भलीभाँति तपश्चर्या करो। उसके बाद अपनी-अपनी इच्छा के अनुसार प्रश्न पूछना। यदि तुम्हारे पूछे हुए प्रश्नो के उत्तर मुझे ज्ञात होंगे तो निस्सन्देह वह सभी उत्तर मैं तुम लोगों को बताऊँगा ॥२॥

अथ कबन्धी कात्यायन उपेत्य पप्रच्छ ।
भगवन् कुते ह वा इमाः प्रजाः प्रजायन्त इति ॥ १.३॥

ऋषि के आज्ञानुसार सबने श्रद्धा, ब्रह्मचर्य और तपस्या के साथ विधिपूर्वक एक वर्षतक वहाँ निवास किया। उसके बाद वे सब पुनः पिप्पलाद ऋषिके पास गये तथा उनमे से कत्य ऋषि के प्रपौत्र कबन्धी ने पिप्पलाद ऋषि के पास जाकर पूछा भगवन! किस प्रसिद्ध और सुनिश्चित कारण विशेष से यह सम्पूर्ण प्रजा अनेक रूपों में उत्पन्न होती है। यह मेरा प्रश्न है ॥ ३ ॥

तस्मै स होवाच प्रजाकामो वै प्रजापतिः स तपोऽतप्यत
स तपस्तप्त्वा स मिथुनमुत्पादयते । रयिं च प्राणं
चेत्येतौ मे बहुधा प्रजाः करिष्यत इति ॥ १.४॥

कबन्धी ऋषिका यह प्रश्न सुनकर महर्षि पिप्पलाद बोले:

हे कात्यायन ! यह बात वेदों में प्रसिद्ध है कि सम्पूर्ण जीवों के स्वामी परमेश्वर को सृष्टि के आदि में जब प्रजा उत्पन्न करने की इच्छा हुई तो उन्होंने संकल्प रूप तप किया। अपने तप के प्रभाव से उन्होंने सृष्टि आरम्भ की, उस समय पहले उसने एक तो रयि (चन्द्रमा) तथा दूसरा प्राण (सूर्य) भी यह जोड़ा उत्पन्न किया। इन्हें उत्पन्न करनेका उद्देश्य यह था कि यह दोनों मिलकर मेरी बहुधा-नाना प्रकार की प्रजाओं को उत्पन्न करेंगे॥४॥

आदित्यो ह वै प्राणो रयिरेव चन्द्रमा रयिर्वा एतत्
सर्वं यन्मूर्तं चामूर्तं च तस्मान्मूर्तिरेव रयिः ॥ १.५॥

यह निश्चय है कि सूर्य ही प्राण हैं और चन्द्रमा ही रयि है अथवा इस प्रकार समझना चाहिए कि यह सूर्य, जो हमें प्रत्यक्ष दिखलायी देता है, यही प्राण है, क्योंकि इसमें सभी को जीवन प्रदान करनेवाली चेतना-शक्ति की प्रधानता और अधिकता है तथा चन्द्रमा ही 'रयि' है, क्योंकि इसमें स्थूल तत्त्वों को पुष्ट करने वाली भूत तन्मात्राओं की ही अधिकता है। समस्त प्राणियोंके स्थूल शरीरोंका पोषण इस चन्द्रमाकी शक्तिको पाकर ही होता है। इसी प्रकार जो कुछ आकारवाला है जैसे पृथ्वी, जल और तेज) और जो आकाररहित है

जैसे आकाश और वायु यह सभी कुछ रयि है। इसलिये मूर्तमात्र ही अर्थात देखने तथा जानने में आनेवाली सभी वस्तुएँ रयि हैं। ॥५॥

अथादित्य उदयन्यत्प्राचीं दिशं प्रविशति तेन प्राच्यान् प्राणान् रश्मिषु सन्निधत्ते । यद्दक्षिणां यत् प्रतीचीं यदुदीचीं यदधो यदूर्ध्वं यदन्तरा दिशो यत् सर्वं प्रकाशयति तेन सर्वान् प्राणान् रश्मिषु सन्निधत्ते ॥ १.६॥

रात्रि के बाद उदय होता हुआ सूर्य जो पूर्व दिशा में प्रवेश करता है। उससे पूर्व दिशा के प्राणों को अपनी किरणों में धारण करता है। उसी प्रकार जो दक्षिण दिशा को, जो पश्चिम दिशा को, जो उत्तर दिशा को, जो नीचे के लोकों को, जो ऊपर के लोकों को, जो दिशाओं के बीच के भागों कोणों को और जो अन्य सभी को प्रकाशित करता है। उससे समस्त प्राणों को अर्थात् सम्पूर्ण जगत के प्राणों को अपनी किरणों में धारण करता है। ॥ ६॥

स एष वैश्वानरो विश्वरूपः प्राणोऽग्निरुदयते । तदेतदृचाऽभ्युक्तम् ॥१.७॥

यह सूर्य ही उदय होता है। जो किवैश्वानर अग्नि (जठराग्नी) और जो विश्वरूप प्राण, अपान, समान, न्यान और उदान-इन पाँच रूपों में विभक्त है, वह भी इस उदय होनेवाले सूर्य का ही अंश है है। यही बात ऋचा द्वारा आगे कही गयी है। ॥७॥

विश्वरूपं हरिणं जातवेदसं परायणं ज्योतिरेकं तपन्तम् ।
सहस्ररश्मिः शतधा वर्तमानः प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः ॥ १.८॥

सम्पूर्ण रूपों के केन्द्र, सर्वज्ञ, सर्वाधार, प्रकाशमय, तपते हुए किरणों वाले सूर्य को अद्वितीय बताते हैं। यह सहत्र किरणोंवाला सूर्य हमारे सैकड़ों प्रकार के व्यवहार सिद्ध करता हुआ, समस्त जीवों का प्राण- जीवन रक्षक बनकर उदय होता है ॥ ८॥

संवत्सरो वै प्रजापतिस्तस्यायने दक्षिणं चोत्तरं च ।
तद्ये ह वै तदिष्टापूर्ते कृतमित्युपासते ते चान्द्रमसमेव
लोकमभिजयन्ते । त एव पुनरावर्तन्ते तस्मादेत ऋषयः
प्रजाकामा दक्षिणं प्रतिपद्यन्ते । एष ह वै रयिर्यः
पितृयाणः ॥ १.९॥

संवत्सर- बारह महीनों वाला एक साल ही प्रजापति है। दो अयन हैं, एक दक्षिण और दूसरा उत्तर। वहाँ मनुष्यों मे जो लोग निश्चयपूर्वक केवल उन इष्ट और पूर्त कर्मो को ही करने योग्य कर्म मानकर सकाम भाव से उनकी उपासना करते है, उन्हीं के अनुष्ठान में लगे रहते हैं। वे चन्द्रमा के लोक को ही प्राप्त होते हैं और, वही पुनः वहाँ से लौटकर आते हैं अर्थात जन्म-मृत्यु चक्र में घूमते रहते हैं। इसलिये यह संतान की कामना वाले ऋषिगण दक्षिण मार्ग को प्राप्त होते हैं। वह निस्सन्देह यही वह रयि है, जो 'पितृयान' नामक मार्ग है ॥९॥

अथोत्तरेण तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया
विद्ययाऽऽत्मानमन्विष्यादित्यमभिजयन्ते । एतद्वै
प्राणानामायतनमेतदमृतमभयमेतत् परायणमेतस्मान्न पुनरावर्तन्त

इत्येष निरोधस्तदेष श्लोकः ॥ १.१०॥

किंतु जो तपस्या के साथ ब्रह्मचर्यपूर्वक और श्रद्धासे युक्त होकर अध्यात्मविद्या के द्वारा सूर्य रूप परमात्मा की खोज करके जीवन सार्थक करते हैं,वह उत्तरायण-मार्ग से सूर्यलोक को प्राप्त करते हैं। यह सूर्य ही प्राणों का केन्द्र है, यह अमृत (अविनाशी) और निर्भय पद है। यह परमगति है, इससे पुन: लौटकर नहीं आते,इस प्रकार यह पुनरावृत्ति का निवारक है अर्थात जन्म-मृत्यु चक्र से मुक्ति दिलाने वाला है। इस बात को स्पष्ट करनेवाला यह अगला श्लोक है ॥१०॥

पञ्चपादं पितरं द्वादशाकृतिं दिव आहुः परे अर्धे पुरीषिणम् ।
अथेमे अन्य उ परे विचक्षणं सप्तचक्रे षडर आहुरर्पितमिति ॥१.११॥

कितने ही लोग तो इस सूर्य को पाँच चरणोंवाला[1], सबका पिता, बारह आकृतियों[2] वाला, जल का उत्पादक और स्वर्गलोक से भी ऊपर के स्थान में स्थित बतलाते हैं। तथा दूसरे कितने ही लोग सात पहियों[3] वाले और छः अरों[4] वाले रथ में बैठा हुआ एवं सबको भलीभाँति जाननेवाला है, ऐसा बतलाते हैं। ॥ ११ ॥

[1] छः ऋतुओंमें से हेमन्तऔर शिशिर-इन दो ऋतुओंकी एकता करके पाँच ऋतुओं को इस सूर्य के पाँच चरण कहा जाता हैं।
[2] बारह महीने ही सूर्य की बारह आकृतियाँ अर्थात् बारह शरीर हैं ।
[3] इन्द्रधनुष रुपी सात रंग ।
[4] छः ऋतुओं का हेतुभूत

मासो वै प्रजापतिस्तस्य कृष्णपक्ष एव रयिः शुक्लः प्रणस्तस्मादेत ऋषयः शुक्ल इष्टं कुर्वन्तीतर इतरस्मिन् ॥ १.१२॥

महीना ही प्रजापति है। उसका कृष्णपक्ष ही रयि है और शुक्लपक्ष प्राण है। इसलिये यह कल्याणकामी ऋषिगण शुक्ल पक्ष में, निष्काम भाव से, यज्ञादि कर्तव्य-कर्म किया करते हैं। तथा दूसरे जो सांसारिक भोगों को चाहने वाले हैं, कृष्णपक्ष में, सकामभाव से, यज्ञादि शुभकर्मो का अनुष्ठान किया करते हैं। ॥ १२॥

अहोरात्रो वै प्रजापतिस्तस्याहरेव प्राणो रात्रिरेव रयिः प्राणं वा एते प्रस्कन्दन्ति ये दिवा रत्या संयुज्यन्ते ब्रह्मचर्यमेव तद्यद्रात्रौ रत्या संयुज्यन्ते ॥ १.१३॥

दिन और रात का जोड़ा ही प्रजापति है। उसका दिन ही प्राण है और रात्रि ही रयि है। अतः जो दिन में सहवास करते है, वह सचमुच अपने प्राणो को ही क्षीण करते हैं तथा जो मनुष्य रात्रि में सहवास करते हैं, वह ब्रह्मचर्य ही है[5]। ॥१३॥

अन्नं वै प्रजापतिस्ततो ह वै तद्रेतस्तस्मादिमाः प्रजाः प्रजायन्त इति ॥ १.१४॥

अन्न ही प्रजापति है। क्योंकि उसी से वीर्य बल उत्पन्न होता है और उस वीर्य से ही सम्पूर्ण चराचर प्राणी उत्पन्न होते हैं। ॥१४॥

तद्ये ह वै तत् प्रजापतिव्रतं चरन्ति ते मिथुनमुत्पादयन्ते ।
तेषामेवैष ब्रह्मलोको येषां तपो ब्रह्मचर्यं येषु सत्यं
प्रतिष्ठितम् ॥ १.१५॥

जो कोई भी निश्चयपूर्व इस प्रजापति-व्रत का अनुष्ठान करते हैं, वह जोड़े को उत्पन्न करते हैं। जिनमें तप और ब्रह्मचर्य है, जिनमें सत्य प्रतिष्ठित है, उन्हीं को ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है। जिनका जीवन सत्यमय है तथा जो सत्यस्वरूप परमेश्वर को अपने हृदय में नित्य स्थित देखते हैं, केवल उन्ही को उस ब्रह्मलोक, परम पद, परमगति की प्राप्ति होती है और दूसरों को नहीं। ॥१५॥

तेषामसौ विरजो ब्रह्मलोको न येषु जिह्ममनृतं न
माया चेति ॥ १.१६॥

जिनमें न तो कुटिलता और झूठ है तथा न माया अर्थात कपट ही है। उन्हीं को वह विशुद्ध, विकाररहित, ब्रह्मलोक प्राप्त होता हैं। ॥ १६ ॥

॥ इति प्रश्नोपनिषदि प्रथमः प्रश्नः ॥

॥ प्रथम प्रश्न समाप्त ॥१॥

॥ श्री हरि ॥

॥ प्रश्नोपनिषद ॥

॥अथ द्वितीय: प्रश्नः॥

द्वितीय प्रश्न

अथ हैनं भार्गवो वैदर्भिः पप्रच्छ । भगवन् कत्येव देवाः प्रजां विधारयन्ते कतर एतत् प्रकाशयन्ते कः पुनरेषां वरिष्ठ इति ॥ २.१॥

इसके पश्चात् इन प्रसिद्ध महात्मा पिप्पलाद ऋषि से विदर्भ देशीय भार्गव ने पूछा भगवन! कुल कितने देवता, प्रजा को धारण करते हैं? उनमें से कौन-कौन इसे प्रकाशित करते है। इसके पश्चात् फिर यह भी बतलाइये कि इन सबमें कौन सर्वश्रेष्ठ है? यही मेरा प्रश्न है? ॥१॥

तस्मै स होवाचाकाशो ह वा एष देवो वायुरग्निरापः पृथिवी वाङ्मनश्चक्षुः श्रोत्रं च । ते प्रकाश्याभिवदन्ति वयमेतद्बाणमवष्टभ्य विधारयामः ॥ २.२॥

उन प्रसिद्ध महर्षि पिप्पलाद ने उन भार्गव से कहा निश्चय ही वह प्रसिद्ध आकाश यह देवता है। तथा वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, वाक-वाणी कर्मेन्द्रियाँ, नेत्र और श्रोत्र ज्ञानेन्द्रियाँ तथा मन अन्तःकरण भी देवता हैं। वे सब अपनी-अपनी शक्ति प्रकट करके अभिमानपूर्वक

कहने लगे हमने इस शरीर को आश्रय देकर धारण कर रखा है। ॥२॥

तान् वरिष्ठः प्राण उवाच । मा मोहमापद्यथ अहमेवैतत् पञ्चधाऽऽत्मानं प्रविभज्यैतद्बाणमवष्टभ्य विधारयामीति तेऽश्रद्दधाना बभूवुः ॥ २.३॥

उनसे सर्वश्रेष्ठ प्राण बोला, तुमलोग मोह में न पडो मैं ही अपने इस स्वरुप को पांच भागों में विभक्त करके, इस शरीर को आश्रय देकर धारण करता हूँ। या सुनकर भी उन देवताओं ने विश्वास नहीं किया, वह अविश्वासी ही बने रहे। ॥३॥

सोऽभिमानादूर्ध्वमुत्क्रामत इव तस्मिन्नुत्क्रामत्यथेतरे सर्व एवोत्क्रामन्ते तस्मिंश्च प्रतिष्ठमाने सर्व एव प्रतिष्ठन्ते । तद्यथा मक्षिका मधुकरराजानमुत्क्रामन्तं सर्व एवोत्क्रमन्ते तस्मिंष्च प्रतिष्ठमाने सर्व एव प्रातिष्टन्त एवं वाङ्मनष्चक्षुः श्रोत्रं च ते प्रीताः प्राणं स्तुन्वन्ति ॥ २.४॥

तब वह प्राण अभिमान पूर्वक मानो उस शरीर से ऊपर की और बाहर निकलने लगा। उसके बाहर निकालने पर, उसी के साथ ही साथ अन्य सब भी बाहर निकलने लगे और शरीर मे लौट कर ठहरने पर वह सब देवता भी ठहर गए। तब जैसे मधु के छत्ते से मधु मक्खियों के राजा के निकलने पर उसी के साथ साथ सारी मधुमखियाँ बाहर निकल जाती हैं और उसके बैठ जाने पर सभी वापस उस छत्ते में बैठ जाती हैं। वैसी ही दशा उन सभी की भी हुई।

यह देख कर वाणी, नेत्र, श्रोत्र और मन वह सभी प्राण की श्रेष्ठता का अनुभव करके प्राण की स्तुति करने लगे। ॥४॥

एषोऽग्निस्तपत्येष सूर्य एष पर्जन्यो मघवानेष वायुः
एष पृथिवी रयिर्देवः सदसच्चामृतं च यत् ॥ २.५॥

वह वाणी आदि सब देवता स्तुति करते हुए बोले:

वह प्राण अग्निरूप से तपता है। वही सूर्य है, वही मेघ है, वही इंद्र है, वही वायु है तथा वह प्राणरूप देव ही पृथ्वी एवं रयि है। तथा जो कुछ सत और असत है तथा जो अमृत कहा जाता है, वह भी है। ॥५॥

अरा इव रथनाभौ प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम् ।
ऋचो यजूꣳषि सामानि यज्ञः क्षत्रं ब्रह्म च ॥ २.६॥

रथ के पहिये की नाभि में लगे हुए, अरों की भाँति ऋग्वेद की सम्पूर्ण ऋचाएँ, यजुर्वेद के मन्त्र तथा सामवेद के मन्त्र यज्ञ और यज्ञ करने वाले ब्राह्मण-क्षत्रिय आदि अधिकारि वर्ग, यह सब के-सब इस प्राण में प्रतिष्ठित हैं अर्थात सबका आश्रय, प्राण ही है। ॥ ६ ॥

प्रजापतिश्चरसि गर्भे त्वमेव प्रतिजायसे ।
तुभ्यं प्राण प्रजास्त्विमा बलिं हरन्ति
यः प्राणैः प्रतितिष्ठसि ॥ २.७॥

हे प्राण! तुम ही प्रजापति हो। तुम ही गर्भ में विचरते हो और तुम ही माता-पिता के अनुरूप होकर जन्म लेते हो। निश्चय ही यह सभी जीव तुम्हे ही भेंट सपर्पित करते हैं। तुम ही अपानादि अन्य प्राणों के साथ-साथ स्थित हो रहा है ॥७॥

देवानामसि वह्नितमः पितृणां प्रथमा स्वधा ।
ऋषीणां चरितं सत्यमथर्वाङ्गिरसामसि ॥ २.८॥

हे प्राण ! तुम ही देवताओं के लिये उत्तम अग्नि हो। पितरों के लिये पहली स्वधा हो, अथर्वा, अंगिरस आदि, ऋषियों के द्वारा आचरित सत्य भी तुम ही हो। ॥८॥

इन्द्रस्त्वं प्राण तेजसा रुद्रोऽसि परिरक्षिता ।
त्वमन्तरिक्षे चरसि सूर्यस्त्वं ज्योतिषां पतिः ॥ २.९॥

हे प्राण! तू तेज से सम्पन्न इन्द्र, रुद्र और रक्षा करनेवाला है, तू ही अन्तरिक्ष में विचरता है और तू ही समस्त ज्योतिर्गणों का स्वामी सूर्य है। ॥९॥

यदा त्वमभिवर्षस्यथेमाः प्राण ते प्रजाः ।
आनन्दरूपास्तिष्ठन्ति कामायान्नं भविष्यतीति ॥ २.१०॥

हे प्राण! जब तू भलीभाँति वर्षा करता है। उस समय तेरी यह सम्पूर्ण प्रजा यथेष्ट अन्न उत्पन्न होगा यह समझ कर आनन्दमय हो जाती है। ॥१०॥

व्रात्यस्त्वं प्राणैकर्षरत्ता विश्वस्य सत्पतिः ।
वयमाद्यस्य दातारः पिता त्वं मातरिश्व नः ॥ २.११॥

हे प्राण! तू संस्काररहित होते हुए भी एकमात्र सर्वश्रेष्ठ ऋषि है तथा हम लोग तेरे लिये भोजन अर्पण करने वाले हैं और तू भोक्ता-भोजन ग्रहण करने वाला है। समस्त जगत का तू ही श्रेष्ठ स्वामी है। हे आकाश में विचरने वाले वायुदेव, तू हमारा पिता है । ॥११॥

या ते तनूर्वाचि प्रतिष्ठिता या श्रोत्रे या च चक्षुषि ।
या च मनसि सन्तता शिवां तां कुरु मोत्क्रमीः ॥२.१२॥

हे प्राण! जो तेरा स्वरूप वाणी में स्थित है तथा जो श्रोत्र में या जो चक्षु में और मन में व्याप्त है। उसको कल्याणमय बना ले, तू उत्क्रमण न कर अर्थात् तुझमें जो हमें सावधान करनेके लिये आवेश आया है, उसे शान्त कर ले और तू शरीरसे उठकर बाहर न जा, यह हम लोगोंकी प्रार्थना है। ॥ १२ ॥

प्राणस्येदं वशे सर्वं त्रिदिवे यत् प्रतिष्ठितम् ।
मातेव पुत्रान् रक्षस्व श्रीश्च प्रज्ञां च विधेहि न इति ॥ २.१३॥

यह प्रत्यक्ष दिखाई देने वाला जगत् और जो कुछ स्वर्ग लोक में स्थित है। वह सभी प्राण के अधीन है। हे प्राण ! जैसे माता अपने पुत्रों की रक्षा करती है उसी प्रकार तू हमारी रक्षा कर तथा हमें कान्ति और बुद्धि -प्रदान कर इस प्रकार यह दूसरा प्रश्न समाप्त हुआ ॥१३ ॥

इस प्रकार इस प्रकरण मे भार्गव ऋषिद्वारा पूछे हुए तीन प्रश्नों का उत्तर देते हुए महर्षि पिप्पलाद ने यह बात समझायी कि समस्त प्राणियों के शरीर को अवकाश देकर बाहर और भीतर से धारण करनेवाला आकाश तत्व है। साथ ही इस शरीर के अवयवों की पूर्ति करने वाले वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी ये चार तत्त्व है। दस इन्द्रियों और अन्त करण ये इसको प्रकाश देकर क्रियाशील बनानेवाले हैं। इन सबसे श्रेष्ठ प्राण है, अत: प्राण ही वास्तवमें इस शरीरको धारण करनेवाला है, प्राणके बिना शरीरको वारण करनेकी शक्ति किसी में नहीं है। अन्य सभी इन्द्रिय इसी की शक्ति से तेज पाकर वे शरीर धारण करते हैं ।

॥ इति प्रश्नोपनिषदि द्वितीयः प्रश्नः ॥

॥ द्वितीय प्रश्न समाप्त ॥२॥

॥ श्री हरि ॥

॥ प्रश्नोपनिषद ॥

॥अथ तृतीयः प्रश्नः॥

तृतीय प्रश्न

अथ हैनं कौशल्यश्चाश्वलायनः पप्रच्छ । भगवन् कुत
एष प्राणो जायते कथमायात्यस्मिञ्शरीर आत्मानं वा
प्रविभज्य कथं प्रतिष्ठते केनोत्क्रमते कथं बाह्यमभिधत्ते
कथमध्यात्ममिति ॥ ३.१॥

उसके बाद इन प्रसिद्ध महात्मा (पिप्पलाद) से कोसलदेशीय आश्वलायन ने पूछा भगवन ! (१) यह प्राण किससे उत्पन्न होता है? (२) इस शरीर में कैसे आता है? तथा (३) अपने को विभाजित करके किस प्रकार स्थित होता है?, (४) किस प्रकार उत्क्रमण करता है अर्थात शरीर से बाहर निकलता है? (५) किस प्रकार बाह्य जगत को भलीभाँति धारण करता है? और (६) किस प्रकार मन और इन्द्रिय आदि शरीरके आंतरिक जगत को धारणा करता है? यही मेरा प्रश्न है ॥१॥

तस्मै स होवाचातिप्रश्नान् पृच्छसि ब्रह्मिष्ठोऽसीति
तस्मात्तेऽहं ब्रवीमि ॥ ३.२॥

उन कोशल देश निवासी आश्वलायन से, उन प्रसिद्ध महर्षि पिपल्लपाद ने कहा:

तू बड़े कठिन प्रश्न पूछ रहा है, किन्तु क्योंकि तू वेदों को अच्छी तरह जाननेवाला है। मैं तेरे प्रश्नों का उत्तर देता हूँ ॥२॥

आत्मन एष प्राणो जायते । यथैषा पुरुषे छायैतस्मिन्नेतदाततं मनोकृतेनायात्यस्मिञ्शरीरे ॥ ३.३॥

यह प्राण परमात्मा से उत्पन्न होता है। जिस प्रकार यह छाया पुरुष होने पर ही होती है, उसी प्रकार यह प्राण परमात्मा के ही आश्रित है और हम शरीर में मन के किये हुए संकल्प से आते हैं। भाव यह कि प्राण के शरीर से बाहर निकलते समय प्राणी के मन में उसके कर्मानुसार जैसा संकल्प होता है, उसे वैसा ही शरीर प्राप्त होता है, अतः प्राणों का शरीर में प्रवेश मन के संकल्प से ही होता है। ॥ ३॥

यथा सम्रादेवाधिकृतान् विनियुङ्क्ते । एतन् ग्रामानोतान् ग्रामानधितिष्ठस्वेत्येवमेवैष प्राण इतरान् प्राणान् पृथक् पृथगेव सन्निधत्ते ॥ ३.४॥

जिस प्रकार सम्राट एवं चक्रवर्ती महाराज स्वयं ही इन गाँवों में तुम रहो, इन गाँवों में तुम रहो, इस प्रकार अधिकारियों को अलग-अलग नियुक्त करता है। इसी प्रकार यह मुख्य प्राण दूसरे प्राणों (प्राण,

अपान, समान, अपान और व्यान) को पृथक पृथक स्थापित करता है। ॥४॥

पायूपस्थेऽपानं चक्षुःश्रोत्रे मुखनासिकाभ्यां प्राणः स्वयं
प्रातिष्ठते मध्ये तु समानः । एष ह्येतद्धुतमन्नं समं नयति
तस्मादेताः सप्तार्चिषो भवन्ति ॥ ३.५॥

वह प्राण गुदा और उपस्थ में अपान को रखता है। स्वयं मुख और नासिका द्वारा विचरता हुआ, नेत्र और श्रोत्र में स्थित रहता है और शरीर के मध्यभाग में समान रहता है। यह समान वायु ही इस इस प्राण अग्नि में हवन किये हुए अन्न को समस्त शरीर में यथायोग्य समभाव से पहुँचाता है। उससे यह सात ज्वालाएँ, विषयों को प्रकाशित करने वाले ऊपर के द्वार अर्थात् समस्त विषयों को प्रकाशित करनेवाले दो नेत्र, दो कान, दो नासिकाएँ और एक मुख (रसना)-ये सात द्वार उत्पन्न होते हैं। उस रस से पुष्ट होकर ही ये अपना-अपना कार्य करनेमें समर्थ होते हैं। ॥५॥

हृदि ह्येष आत्मा । अत्रैतदेकशतं नाडीनां तासां शतं
शतमेकैकस्या द्वासप्ततिर्द्वासप्ततिः प्रतिशाखानाडीसहस्राणि
भवन्त्यासु व्यानश्चरति ॥ ३.६॥

यह प्रसिद्ध जीवात्मा हृदयदेश में रहता है। इस हृदय में मूलरूप से एक सौ नाड़ियों का समुदाय है। उनमें से, एक-एक नाड़ी में एक-एक सौ शाखाएं हैं। प्रत्येक शाखा-नाड़ी की बहत्तर-बहत्तर

प्रतिशाखा नाडी हजार प्रतिगाखा-नाड़ियाँ होती हैं, इनमें व्यान वायु विचरण करता है। इस प्रकार मनुष्य के शरीर मे कुल बहत्तर करोड़ नाड़ियाँ हैं, इन सबमें व्यान वायु विचरण करता है। ॥६॥

अथैकयोर्ध्व उदानः पुण्येन पुण्यं लोकं नयति पापेन पापमुभाभ्यामेव मनुष्यलोकम् ॥ ३.७॥

तथा एक अन्य जो नाड़ी है उसके द्वारा उदान वायु ऊपर की ओर विचरता है। वह पुण्यकर्मो के द्वारा मनुष्य को पुण्यलोकों मे ले जाता है और पापकर्मों के कारण उसे पापयोनियों में ले जाता है तथा पाप और पुण्य दोनों प्रकार के कर्मों द्वारा जीव को मनुष्य-शरीर में ले जाता है। अर्थात जो मनुष्य पुण्यशील होता है, जिसके शुभकर्मो के भोग उदय हो जाते हैं, उसे यह उदान वायु ही अन्य सब प्राण और इन्द्रियोंके सहित वर्तमान शरीर से निकालकर पुण्यलोकों में अर्थात् स्वर्गादि उच्च लोकोंमें ले जाता है । पापक्रम से युक्त मनुष्य को शूकर-कूकर आदि पाप-योनियों में ले जाता है तथा जो पाप और पुण्य-दोनो प्रकारके कर्मों का मिश्रित फल भोगने के लिये अभिमुख हुए रहते हैं, उनको मनुष्य शरीरमें ले जाता है।[6] ॥७॥

---

[6] एक शरीरसे निकलकर जब मुख्य प्राण उदानको साथ लेकर उसके द्वारा दूसरे शरीरमें जाता है, तव अपने अङ्गभूत समान आदि प्राणोंको तथा इन्द्रिय और मनको तो साथ ले ही जाता है, इन सवका स्वामी जीवात्मा भी उसीके साथ जाता है-यह वाव यहाँ कहनी थी, इसीलिये पूर्वमन्त्रमें जावात्माका स्थान हृदय वतलाया गया है।

आदित्यो ह वै बाह्यः प्राण उदयत्येष ह्येनं चाक्षुषं
प्राणमनुगृह्णानः । पृथिव्यां या देवता सैषा पुरुषस्य
अपानमवष्टभ्यान्तरा यदाकाशः स समानो वायुर्व्यानः ॥ ३.८॥

यह निश्चय है की सूर्य ही बाह्य प्राण है। यही इस नेत्र सम्बन्धी प्राण पर अनुग्रह करता हुआ उदित होता है। पृथ्वी में जो अपान वायु का शक्तिरूप देवता है, वही यह मनुष्य के अपान वायु को स्थिर किये रहता है। पृथ्वी और सीर्ग के बीच जो आकाश-अन्तरिक्षलोक है, वह समान है, वायु ही व्यान है। ॥८॥

तेजो ह वा उदानस्तस्मादुपशान्ततेजाः । पुनर्भवमिन्द्रियैर्मनसि
सम्पद्यमानैः ॥ ३.९॥

प्रसिद्ध तेज (उष्णता) ही उदान है इसीलिये जिसके शरीर का तेज शांत हो जाता है, वह (जीवात्मा) मन में विलीन हुई इन्द्रियों के साथ पुनर्जन्म को प्राप्त होता है। ॥९॥

यच्चित्तस्तेनैष प्राणमायाति । प्राणस्तेजसा युक्तः सहात्मना
तथासङ्कल्पितं लोकं नयति ॥ ३.१०॥

यह जीवात्मा जिस संकल्प वाला होता है, उस संकल्प के साथ मुख्य प्राण में स्थित हो जाता है। मुख्य प्राण तेज, उदान से युक्त हो मन,

इन्द्रियों से युक्त जीवात्मा को उसके संकल्प अनुसार विभिन्न लोक अथवा योनि को ले जाता है।॥१०॥

य एवं विद्वान् प्राणं वेद न हास्य प्रजा हीयतेऽमृतो
भवति तदेषः श्लोकः ॥ ३.११॥

जो कोई विद्वान इस प्रकार प्राण के रहस्य को जानता है, उसकी संतान परंपरा कभी नष्ट नहीं होती। वह अमर हो जाता है अर्थात जन्म-मरण रूप संसार से मुक्त हो जाता है। इस विषय का यह अगला श्लोक है। ॥११॥

उत्पत्तिमायतिं स्थानं विभुत्वं चैव पञ्चधा ।
अध्यात्मं चैव प्राणस्य विज्ञायामृतमश्नुते
विज्ञायामृतमश्नुत इति ॥ ३.१२॥

प्राण की उत्पत्ति, आगम स्थान और व्यापकता को भी तथा इसके बाहरी और भीतरी अर्थात अधिभौतिक और आध्यात्मिक पांच भेदों को भी भली भांति जानकार मनुष्य अमृत का अनुभव करता है, जानकार मनुष्य अमृत का अनुभव करता है अर्थात उस अमृतस्वरूप परमानंद परब्रह्म परमेश्वर को प्राप्त कर लेता है। ॥१२॥

॥ इति प्रश्नोपनिषदि तृतीयः प्रश्नः ॥

॥ तृतीय प्रश्न समाप्त॥

॥ श्री हरि ॥

॥ प्रश्नोपनिषद ॥

॥अथ चतुर्थः प्रश्नः॥

चतुर्थ प्रश्न

अथ हैनं सौर्यायणि गार्ग्यः पप्रच्छ । भगवन्नेतस्मिन् पुरुषे
कानि स्वपन्ति कान्यस्मिञ्जाग्रति कतर एष देवः स्वप्नान् पश्यति
कस्यैतत् सुखं भवति कस्मिन्नु सर्वे सम्प्रतिष्ठिता भवन्तीति ॥ ४.१॥

तदनन्तर इन प्रसिद्ध महात्मा पिप्पलाद मुनि से गर्ग गोत्र में उत्पन्न सौर्यायणी ऋषि ने पूछा हे भगवन् ! इस मनुष्य शरीर में कौन कौन सोते हैं? इसमें कौन-कौन जागते रहते हैं? यह कौन देवता स्वप्नों को देखता है? यह सुख किसको होता है? और यह सब के सब किसमें निश्चित रूप से सम्पूर्णतया स्थित रहते हैं? यह मेरा प्रश्न है। ॥१॥

तस्मै स होवाच यथा गार्ग्य मरीचयोऽर्कस्यास्तं गच्छतः सर्वा
एतस्मिंस्तेजोमण्डल एकीभवन्ति ताः पुनः पुनरुदयतः प्रचरन्त्येवं
ह वै तत् सर्वं परे देवे मनस्येकीभवति तेन तर्ह्येष पुरुषो न
शृणोति न पश्यति न जिघ्रति न रसयते न स्पृशते नाभिवदते
नादत्ते नानन्दयते न विसृजते नेयायते स्वपितीत्याचक्षते ॥ ४.२॥

उससे उन सुप्रसिद्ध महर्षि ने कहा हे गार्ग्य ! जिस प्रकार अस्त होते हुए सूर्य की किरणें इस तेजोमण्डल में सब की-सब एक हो जाती हैं। फिर सूर्य उदय होने पर वह सब पुनः पुन सब ओर फैलती रहती हैं। ठीक ऐसे ही निद्राके समय यह सभी इन्द्रियाँ भी परम देव मन में एक हो जाती हैं। इस कारण उस समय यह जीवात्मा न तो सुनता, है न देखता है, न सूंघता है, न स्वाद लेता है न स्पर्श करता है, न बोलता है, न ग्रहण करता है, न मैथुन का आनन्द भोगता है, न मल-मूत्रका त्याग करता है और न चलता ही है। उस समय 'वह सो रहा है' ऐसा लोग कहते है। उसके जागने पर पुनः वह सभी इन्द्रियाँ मन से पृथक् होकर अपना-अपना कार्य करने लाती हैं-ठीक वैसे ही, जिस प्रकार सूर्य के उदय होने पर उसकी किरणें पुनः सब ओर फैल जाती हैं।॥२॥

प्राणाग्नय एवैतस्मिन् पुरे जाग्रति । गार्हपत्यो ह वा एषोऽपानो व्यानोऽन्वाहार्यपचनो यद्गार्हपत्यात् प्रणीयते प्रणयनादाहवनीयः प्राणः ॥ ४.३॥

इस शरीर रूप नगर में पांच प्राणरूप अग्नियाँ ही जागती रहती हैं। यह प्रसिद्ध अपान ही गार्हपत्य अग्नि है। व्यान अन्वाहार्य पचन नामक अग्नि- दक्षिणाग्नि है। गार्हपत्य अग्नि से जो उठाकर ले जायी जाती है वह, आहवनीय अग्नि प्रणयन उठाकर ले जाये जाने के कारण ही प्राणरूप है। ॥ ३॥

यदुच्छ्वासनिःश्वासावेतावाहुती समं नयतीति स समानः । मनो ह

वाव यजमानः । इष्टफलमेवोदानः । स एनं यजमानमहरहर्ब्रह्म गमयति ॥ ४.४॥

जो ऊधर्वश्वास और अधाश्वास हैं, यह दोनों ही मानो अग्निहोत्र की दो आहुतियाँ हैं। इन दोनों आहुतियों को जो समभाव से सभी ओर पहुंचाता है वह 'समान' कहलाता है, वही हवन करने वाला ऋत्विक् है। यह प्रसिद्ध मन ही यजमान है। एवं इस हवन से प्राप्त अभीष्ट फल ही उदान है, यह उदान ही इस मनरूप यजमान को प्रतिदिन निद्राके समय ब्रह्मलोक में भेजता है अर्थात् हृदय रुपी गुफा मे स्थित कर देता है। ॥४॥

अत्रैष देवः स्वप्ने महिमानमनुभवति । यद्दृष्टं दृष्टमनुपश्यति श्रुतं श्रुतमेवार्थमनुशृणोति देशदिगन्तरैश्च प्रत्यनुभूतं पुनः पुनः प्रत्यनुभवति दृष्टं चादृष्टं च श्रुतं चाश्रुतं चानुभूतं चाननुभूतं च सच्चासच्च सर्वं पश्यति सर्वः पश्यति ॥ ४.५॥

इस स्वप्न अवस्था में यह देव जीवात्मा अपनी विभूति का अनुभव करता है। जो बार-बार देखा हुआ है उसी को बार-बार देखता है। बार-बार सुनी हुई बातों को ही पुनः पुनः सुनता है। अनेकों देश और दिशाओं में बार-बार अनुभव किये हुए विषयों को बार बार अनुभव करता है। इतना ही नहीं देखे हुए और न देखे हुए को भी, सुने हुए और न सुने हुए को भी, अनुभव किये हुए और अनुभव न किये हुए को भी, विद्यमान और अविद्यमान को भी इस प्रकार सारी घटनाओं को देखता है तथा स्वयं सब कुछ बनकर देखता है ॥ ५॥

स यदा तेजसाऽभिभूतो भवति । अत्रैष देवः स्वप्नान्न
पश्यत्यथ यदैतस्मिञ्शरीर एतत्सुखं भवति ॥ ४.६॥

वह मन जब तेज उदान वायु से अभिभूत हो जाता है। इस स्थिति में यह जीवात्मारुपी देवता स्वप्नो को नहीं देखता। तथा उस समय इस मनुष्य-शरीर में जीवात्मा को सुषुप्ति के सुख का अनुभव होता है। अर्थात् जब उदान वायु इस मनको जीवालाके निवासस्थान हृदयमें पहुँचाकर मोहित कर देता है, उस निद्रा-अवस्थामे यह जीवात्मा मनके द्वारा स्वमकी घटनाओंको नहीं देखता। उस समय निद्राजनित सुखका अनुभव जीवात्माको ही होता है। ॥६॥

स यथा सोभ्य वयांसि वसोवृक्षं सम्प्रतिष्ठन्ते । एवं
ह वै तत् सर्वं पर आत्मनि सम्प्रतिष्ठते ॥ ४.७॥

पांचवी बात जो तुमने पूछी थी वह इस प्रकार समझनी चाहिए। हे प्रिय, जिस प्रकार बहुत से पंछी सांय काल में अपने निवास रूप वृक्ष पर आराम से ठहरते है। ठीक वैसे ही आगे बताये जाने वाले पृथिवी आदि तत्वों से लेकर प्राण तक सभी परब्रह्म परमात्मा में जो कि सबके आत्मा हैं, आश्रय लेते हैं क्योंकि वही इन सबके परम आश्रय हैं। ॥७॥

पृथिवी च पृथिवीमात्रा चापश्चापोमात्रा च तेजश्च तेजोमात्रा च
वायुश्च वायुमात्रा चाकाशश्चाकाशमात्रा च चक्षुश्च द्रष्टव्यं
च श्रोत्रं च श्रोतव्यं च घ्राणं च घ्रातव्यं च रसश्च

रसयितव्यं च त्वक्च स्पर्शयितव्यं च वाक्च वक्तव्यं च हस्तौ चादातव्यं चोपस्थश्चानन्दयितव्यं च पायुश्च विसर्जयितव्यं च यादौ च गन्तव्यं च मनश्च मन्तव्यं च बुद्धिश्च बोद्धव्यं चाहङ्कारश्चाहङ्कर्तव्यं च चित्तं च चेतयितव्यं च तेजश्च विद्योतयितव्यं च प्राणश्च विधारयितव्यं च ॥ ४.८॥

पृथिवी और उसकी तन्मात्रा-सूक्ष्म गन्ध भी, जल और रस-तन्मात्रा भी, तेज और रूप-तन्मात्रा भी, वायु और स्पर्श तन्मात्रा भी, आकाश और शब्द तन्मात्रा भी, नेत्र-इन्द्रिय और देखने में आनेवाली वस्तु भी, श्रोत्र-इन्द्रिय और सुननेमें आनेवाली वस्तु भी, घ्राणेन्द्रिय और सूंघने में आनेवाली वस्तु भी, इन्द्रिय और रसना के विषय भी, इन्द्रिय और स्पर्श में आनेवाली वस्तु भी, वाक-इन्द्रिय और बोलने में आनेवाला शब्द भी, दोनों हाथ और पकड़ने में आनेवाली वस्तु भी, उपस्थ इन्द्रिय और उसका विषय भी, गुदा इन्द्रिय और उसके द्वारा परित्याग योग्य वस्तु भी, दोनों चरण और गन्तव्य स्थान भी, मन और मनन में आनेवाली वस्तु भी, बुद्धि और जानने में आनेवाली वस्तु भी, अहंकार और उसका विषय भी, चित्त और चिन्तनमें आनेवाली वस्तु भी, प्रभाव और उसका विषय भी, प्राण और प्राण के द्वारा धारण किये जानेवाले पदार्थ भी, यह सभी परमात्मा के ही आश्रित हैं।॥८॥

एष हि द्रष्टा स्प्रष्टा श्रोता घ्राता रसयिता मन्ता बोद्धा कर्ता विज्ञानात्मा पुरुषः । स परेऽक्षर आत्मनि सम्प्रतिष्ठते ॥ ४.९॥

यह जो स्पष्ट देखने वाला, स्पर्श करनेवाला, सुननेवाला, सूंघने वाला, स्वाद लेनेवाला, मनन करने वाला, जाननेवाला तथा कर्म करनेवाला,

विज्ञाना स्वरूप जीवात्मा है। वह भी अविनाशी परमात्मा में भली-भाँति स्थित है। ॥९॥

परमेवाक्षरं प्रतिपद्यते स यो ह वै तदच्छायमशरीरमलोहितं
शुभ्रमक्षरं वेदयते यस्तु सोम्य । स सर्वज्ञः सर्वो भवति ।
तदेष श्लोकः ॥ ४.१०॥

निश्चय ही जो कोई भी, उस छायाराहित, शरीर रहित, लाल पीले आदि रंगों से रहित विशुद्ध अविनाशी पुरुष को जानता है। वह परम अविनाशी परमात्मा को ही प्राप्त हो जाता है। हे प्रिय! जो कोई भी ऐसा है, अर्थात् जो भी उस परब्रह्म परमेश्वरको प्राप्त कर लेता है वह सर्वज्ञ और सर्वरूप हो जाता है, उस विषय में यह अगला श्लोक है। ॥ १० ॥

विज्ञानात्मा सह देवैश्च सर्वैः प्राणा भूतानि सम्प्रतिष्ठन्ति यत्र
तदक्षरं वेदयते यस्तु सोम्य स सर्वज्ञः सर्वमेवाविवेशेति ॥ ४.११॥

जिसमें समस्त प्राण और पाँचों भूत तथा सम्पूर्ण इन्द्रिय और अन्तःकरणके सहित विज्ञानस्वरूप आत्मा आश्रय लेते हैं। हे प्रिय ! उस अविनाशी परमात्मा को जो कोई जान लेता है, वह सर्वज्ञ है। वह सर्व स्वरूप परमेश्वर में प्रविष्ट हो जाता है, इस प्रकार इस प्रश्नका उत्तर समाप्त हुआ। ॥ ११ ॥

॥ इति प्रश्नोपनिषदि चतुर्थः प्रश्नः ॥
॥चतुर्थ प्रश्न समाप्त ॥४॥

॥ श्री हरि॥

॥ प्रश्नोपनिषद ॥

॥अथ पञ्चमः प्रश्नः॥

पांचवां प्रश्न

अथ हैनं शैब्यः सत्यकामः पप्रच्छ । स यो ह वै
तद्भगवन्मनुष्येषु प्रायणान्तमोङ्कारमभिध्यायीत । कतमं वाव
स तेन लोकं जयतीति । तस्मै स होवाच ॥ ५.१॥

उसके बाद इन प्रसिद्ध महर्षि पिप्पलाद से शिवि पुत्र सत्यकाम ने पूछा हे भगवन! मनुष्यों में से वह जो कोई भी मृत्युपर्यन्त ओंकार का भली भाँति ध्यान करता है। वह उस उपासना के द्वारा कौन से लोक को निस्सन्देह जीत लेता है, यह मेरा प्रश्न है? ॥१॥

एतद्वै सत्यकाम परं चापरं च ब्रह्म यदोङ्कारः ।
तस्माद्विद्वानेतेनैवायतनेनैकतरमन्वेति ॥ ५.२॥

उससे उन प्रसिद्ध महर्षि ने कहा, हे सत्यकाम! निश्चय ही यह जो ओंकार है वही परब्रह्म और अपर ब्रह्म भी है। इसलिये इस प्रकार का ज्ञान रखने वाला मनुष्य, इस एक ही अवलम्ब से अर्थात् प्रणव

मात्र के चिन्तन से, अपर और परब्रह्म में से किसी एक का अपनी श्रद्धा के अनुसार अनुसरण करता है ॥२॥

स यद्येकमात्रमभिध्यायीत स तेनैव संवेदितस्तूर्णमेव
जगत्यामभिसम्पद्यते । तमृचो मनुष्यलोकमुपनयन्ते स तत्र
तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया सम्पन्नो महिमानमनुभवति ॥ ५.३॥

वह उपासक यदि एक मात्रा से युक्त ओंकार का भली भाँति ध्यान करे तो वह उस उपासना से ही अपने ध्येय की ओर प्रेरित किया हुआ शीघ्र ही पृथ्वी में उत्पन्न हो जाता है। उसको ऋग्वेद की ऋचाएँ मनुष्य-शरीर प्राप्त करा देती हैं । वहाँ वह उपासक तप, ब्रह्मचर्य और श्रद्धा से सम्पन्न होकर महिमा का अनुभव करता है अर्थात श्रेष्ठ मनुष्य बनकर उपयुक्त ऐश्वर्यका उपभोग करता है। अर्थात् उसे नीची योनियोंमें नहीं भटकना पड़ता, वह मरनेके बाद मनुष्य होकर पुनः शुभ कर्म करनेमें समर्थ हो जाता है और वहाँ नाना प्रकारके सुखोंका उपभोग करता है। ॥३॥

अथ यदि द्विमात्रेण मनसि सम्पद्यते सोऽन्तरिक्षं
यजुर्भिरुन्नीयते सोमलोकम् । स सोमलोके विभुतिमनुभूय
पुनरावर्तते ॥ ५.४॥

परन्तु यदि दो मात्राओं से युक्त ओंकार का अच्छी प्रकार ध्यान करता है तो उससे मनोमय चन्द्रलोक को प्राप्त होता है। वह यजुर्वेद के मन्त्र अन्तरिक्ष मे स्थित चंद्रलोक को ऊपर की ओर ले जाया जाता है। वह चंद्रलोक में, वहाँ के ऐश्वर्य का अनुभव करके पुन: इस लोक

में लौट आता है। अर्थात विनाशशील स्वर्गलोक में अनेकों प्रकार का ऐश्वर्य का उपभोग करके अपनी उपासना से पुण्य का क्षय हो जाने पर, पुन: मृत्युलोक मे आ जाता है जहाँ उसे अपने पूर्व कर्मानुसार मनुष्य शरीर या कोई भी ऊंची या नीची योनि प्राप्त हो जाती है। ॥४॥

यः पुनरेतं त्रिमात्रेणोमित्येतेनैवाक्षरेण परं पुरुषमभि-
ध्यायीत स तेजसि सूर्ये सम्पन्नः । यथा पादोदरस्त्वचा विनिर्मुच्यत
एवं ह वै स पाप्मना विनिर्मुक्तः स सामभिरुन्नीयते ब्रह्मलोकं
स एतस्माज्जीवघनात् परात्परं पुरिशयं पुरुषमीक्षते । तदेतौ
श्लोकौ भवतः ॥ ५.५॥

परंतु जो तीन मात्राओं वाले ओमरूप इस अक्षर के द्वारा ही इस परम पुरुष का निरंतर ध्यान करता है। वह तेजोमय सूर्य लोक मे जाता है। तथा जिस प्रकार सर्प केंचुली से अलग हो जाता है ठीक उसी प्रकार वह पापों से सर्वथा मुक्त हो जाता है। इसके बाद सामवेद की श्रुतियों द्वारा ऊपर ब्रह्मलोक में ले जाता है । वह इस जीवन समुदाय रूप परतत्व से अत्यंत श्रेष्ठ अंतर्यामी परमपुरुष पुरूषोत्तम को साक्षात् कर लेता है। इस विषय में यह अगले दो श्लोक हैं । ॥५॥

तिस्रो मात्रा मृत्युमत्यः प्रयुक्ता अन्योन्यसक्ताः अनविप्रयुक्ताः ।
क्रियासु बाह्याभ्यन्तरमध्यमासु सम्यक् प्रयुक्तासु न कम्पते ज्ञः
॥५.६॥

ओंकार की तीनों मात्राएँ ('अ', 'उ' तथा 'म'), एक दूसरी से संयुक्त रहकर प्रयुक्त की गयी हों। अथवा पृथक्-पृथक् एक-एक ध्येय के चिन्तन में इनका प्रयोग किया जाय, दोनो प्रकार से ही वह मृत्युयुक्त है। बाहर, भीतर और बीच की क्रियाओं में पूर्णतया इन मात्राओं का प्रयोग किये जाने पर, उस परमेश्वर को जाननेवाला ज्ञानी विचलित नहीं होता।

अर्थ यह है जो साधक ओंकार का उच्चारण कर इस जगत के आत्मरूप परब्रह्म पुरुषोत्तम की ओर लक्ष्य नहीं करता परन्तु जो जगत के बाहरी वाह्य स्वरूप में ही आसक्त हो रहा है, वह उन्हें नहीं पाता, अतः बार बार जन मृत्यु चक्र में घूमता रहता है। मोक्ष तो केवल वही साधक प्राप्त कर सकता है जो उन्हें अपने शरीर के बाहर, भीतर और शरीर के मध्यस्थान-हृदयदेश में एवं उसके द्वारा की जानेवाली बाहरी, भीतरी समस्त क्रियाओं में सर्वत्र ओंकार के स्वरुप एकमात्र परब्रह्म पुरुषोत्तमको व्याप्त समझता है और ओंकार द्वारा उनकी उपासना करता है उन्हे पाने की अभिलाषा से ओंकार का जप, स्मरण और चिन्तन करता है, वह ज्ञानी परमात्माको पाकर फिर कभी अपनी स्थिति से विचलित नहीं होता ॥६॥

ऋग्भिरेतं यजुर्भिरन्तरिक्षं सामभिर्यत् तत् कवयो वेदयन्ते ।
तमोङ्कारेणैवायतनेनान्वेति विद्वान् यत्तच्छान्तमजरममृतमभयं परं चेति ॥ ५.७॥

एक मात्रा की उपासनासे उपासक ऋचाओं द्वारा इस मनुष्यलोक में पहुँचाया जाता है। दो मात्राओं की उपासना करने वाला यजुर्वेद की श्रुतियों द्वारा अन्तरिक्ष में चन्द्रलोक तक पहुँचाया जाता है। पूर्णरूप

से ओंकार की उपासना करने वाला सामवेद की श्रुतियों द्वारा उस ब्रह्मलोक में पहुँचाया जाता है । जिसको ज्ञानीजन जानते हैं, विद्वान् विवेकशील साधक केवल ओंकार रूप अवलम्बन के द्वारा ही उस परब्रह्म पुरूषोत्तम को प्राप्त कर लेता है। जो परम शांत , जराराहित, मृत्युरहित, भयरहित,और सर्वश्रेष्ठ है ।॥ ७ ॥

॥ इति प्रश्नोपनिषदि पञ्चमः प्रश्नः ॥

॥ पञ्चम प्रश्न समाप्त॥५॥

॥ श्री हरि॥

॥ प्रश्नोपनिषद ॥

॥अथ षष्ठः प्रश्नः॥

छठा प्रश्न

अथ हैनं सुकेशा भारद्वाजः पप्रच्छ । भगवन् हिरण्यनाभः कौसल्यो राजपुत्रो मामुपेत्यैतं प्रश्नमपृच्छत । षोडशकलं भारद्वाज पुरुषं वेत्थ । तमहं कुमारमब्रुवं नाहमिमं वेद । यद्यहमिममवेदिषं कथं ते नावक्ष्यमिति । समूलो वा एष परिशुष्यति योऽनृतमभिवदति तस्मान्नार्हम्यनृतं वक्तुम् । स तूष्णीं रथमारुह्य प्रवव्राज । तं त्वा पृच्छामि क्वासौ पुरुष इति ॥ ६.१॥

फिर इन प्रसिद्ध महात्मा पिप्पलाद से भारद्वाज पुत्र सुकेशा ने भगवन! कोसलदेशीय राजकुमार हिरण्यनाभ ने मेरे पास आकर यह प्रश्नः पूछा हे भारद्वाज! क्या तुम सोलह कलाओं वाले पुरुष को जानते हो। तब उस राजकुमार से मैंने कहा मैं इसे नहीं जानता। यदि मैं इसे जानता होता तो तुझे नहीं बताता। वह मनुष्य अवश्य मूलरूप से सर्वथा सूख जाता है, नष्ट हो जाता है, जो झूठ बोलता है। इसलिये मैं झूठ बोलने में समर्थ नहीं हूँ। वह राजकुमार मेरा उत्तर सुन कर चुपचाप रथ पर सवार होकर चला गया। उसी को मैं आपसे पूछ रहा

हूँ। कृपया आप मुझे बतलायें कि वह कहाँ है और उसका स्वरूप क्या है? ॥१॥

तस्मै स होवाचेहैवान्तःशरीरे सोम्य स पुरुषो
यस्मिन्नताः षोडशकलाः प्रभवन्तीति ॥ ६.२॥

उससे वह सुप्रसिद्ध महर्षि बोले, हे प्रिय ! यहाँ इस शरीर के भीतर ही वह पुरुष है जिसमे यह सोलह कलाएँ प्रकट होती हैं अर्थात जब मनुष्य के हृदय में परमात्मा को पाने के लिये उत्कट अभिलाषा जाग्रत् हो जाती है, तब वे उसे वहीं उसके हृदयमे ही मिल जाते हैं। ॥२॥

स ईक्षाचक्रे । कस्मिन्नहमुत्क्रान्त उत्क्रान्तो भविष्यामि
कस्मिन्वा प्रतिष्ठिते प्रतिष्ठास्यामीति ॥ ६.३॥

उसने विचार किया कि शरीर से किसके निकल जाने पर, मैं भी निकल जाऊंगा तथा किसके इस शरीर में स्थित रहनेपर, मैं भी स्थित रहूँगा ॥३॥

स प्राणमसृजत प्राणाच्छ्रद्धां खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवीन्द्रियं
मनः । अन्नमन्नाद्वीर्यं तपो मन्त्राः कर्म लोका लोकेषु च नाम च
॥ ६.४॥

उसने यह सोचकर सबसे पहले प्राण की रचना की, प्राण के बाद श्रद्धा को उत्पन्न किया। उसके बाद क्रमशः आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी, यह पाँच महाभूत प्रकट हुए। फिर मन-अन्तःकरण और

इन्द्रिय समुदाय की उत्पत्ति हुई । इसके पश्च्यात अन्न उत्पन्न हुआ, अन्न से वीर्य की रचना हुई, फिर तप अनेक प्रकार प्रकार के मन्त्र, अनेकों प्रकार के कर्म और उनके फलरूप मिन्न-भिन्न लोकों का निर्माण हुआ और उन लोकों में नाम रूप की रचना हुई।

इस प्रकार सोलह कलाओं से युक्त इस ब्रह्माण्ड की रचना करके जीवात्मा के सहित परमेश्वर स्वयं इसमें प्रविष्ट हो गये, इसीलिये वह सोलह कलाओं वाले पुरुष कहलाते हैं। हमारा यह मनुष्य-शरीर भी ब्रह्माण्ड का ही एक सूक्ष्म रूप है, अतः परमेश्वर जिस प्रकार इस सारे ब्रह्माण्डमें हैं, उसी प्रकार हमारे इस शरीर में भी हैं और इस शरीर में भी वह सोलह कलाएँ विद्यमान हैं। उन ह्रदय में स्थित परमदेव पुरुषोत्तम को जान लेना ही उस सोलह कलावाले पुरुष को जान लेना है। ॥४॥

स यथेमा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रायणाः समुद्रं प्राप्यास्तं गच्छन्ति भिद्येते तासां नामरूपे समुद्र इत्येवं प्रोच्यते । एवमेवास्य परिद्रष्टुरिमाः षोडशकलाः पुरुषायणाः पुरुषं प्राप्यास्तं गच्छन्ति भिद्येते चासां नामरूपे पुरुष इत्येवं प्रोच्यते स एषोऽकलोऽमृतो भवति तदेष श्लोकः ॥ ६.५॥

वह प्रलय का दृष्टान्त इस प्रकार है, जिस प्रकार ये नदियाँ समुद्र की ओर लक्ष्य करके जाती और बहती हुई। समुद्र को, प्राप्त कर उसी में विलीन हो जाती हैं। उनके नाम और रूप नष्ट हो जाते हैं। और फिर केवल समुद्र इस एक नाम से ही पुकारी जाती हैं। इसी प्रकार

सब ओर से पूर्णतया देखने वाले इन परमेश्वर की, ऊपर बतायी हुई सोलह कलाएँ जिनका परमाधार और परमगति पुरुष है। प्रलयकाल में परम पुरुष परमात्मा को पाकर उन्हीं में विलीन हो जाती हैं तथा इन सबके नाम रुपी पृथक-पृथक् नाम और रूप नष्ट हो जाते हैं। फिर 'पुरुष' इस एक नाम से ही पुकारी जाती हैं। वही यह कलारहित और अमर परमात्मा है। -उसके विषय में यह अगला श्लोक है। ॥५॥

अरा इव रथनाभौ कला यस्मिन्प्रतिष्ठिताः ।
तं वेद्यं पुरुषं वेद यथ मा वो मृत्युः परिव्यथा इति ॥ ६.६॥

रथ-चक्र की नाभि के आधार पर जिस प्रकार अरे स्थित होते हैं वैसे ही जिसमें ऊपर बतायी हुई सभी कलाएँ स्थित है। उस जानने योग्य, सबके आधारभूत, परम पुरुष परमेश्वर को जानना चाहिये। जिससे तुम लोगों को मृत्यु दुःख न दे सके। ॥६॥

तान् होवाचैतावदेवाहमेतत् परं ब्रह्म वेद । नातः
परमस्तीति ॥ ६.७॥

इतना उपदेश करने के बाद उन प्रसिद्ध महर्षि पिप्पलाद ने, उन सबसे कहा इस परम ब्रह्म को मैं इतना ही वेद जानता हूँ। अतः इससे परे अर्थात श्रेष्ठ और उत्कृष्ट तत्व नहीं है। ॥७॥

ते तमर्चयन्तस्त्वं हि नः पिता योऽस्माकमविद्यायाः परं पारं
तारयसीति । नमः परमऋषिभ्यो नमः परमऋषिभ्यः ॥ ६.८॥

तब उन छहों ऋषियों ने पिप्पलादकी पूजा की और कहा आप ही हमारे पिता हैं। जिन्होंने हम लोगों को, अविद्या के दूसरे पार पहुँचा दिया है। आप परम ऋषि को नमस्कार है। परम ऋषि को नमस्कार है ॥ ८॥

॥ इति प्रश्नोपनिषदि षष्ठः प्रश्नः ॥

॥ षष्ठ प्रश्न समाप्त ॥ ६॥

॥ हरि ॐ ॥

शान्तिपाठ

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाभद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ॥

हे देवगण ! हम भगवान का आराधन करते हुए कानों से कल्याणमय वचन सुनें। नेत्रों से कल्याण ही देखें। सुदृढः अंगों एवं शरीर से भगवान की स्तुति करते हुए हमलोग जो आयु आराध्य देव परमात्मा के काम आ सके उसका उपभोग करें।

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥

जिनका सुयश सभी ओर फैला हुआ है, वह इन्द्रदेव हमारे लिए कल्याण की पुष्टि करें, सम्पूर्ण विश्व का ज्ञान रखने वाले पूषा हमारे लिए कल्याण की पुष्टि करें, हमारे जीवन से अरिष्टों को मिटाने के लिए चक्र सदृश्य, शक्तिशाली गरुड़देव हमारे लिए कल्याण की पुष्टि करें तथा बुद्धि के स्वामी बृहस्पति भी हमारे लिए कल्याण की पुष्टि करें।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

हमारे, अधिभौतिक, अधिदैविक तथा तथा आध्यात्मिक तापों (दुखों) की शांति हो।

॥ इति अथर्ववेदीय प्रश्नोपनिषद ॥

॥ अथर्ववेदीय प्रश्नोपनिषद समाप्त ॥

संकलनकर्ता:

श्री मनीष त्यागी

संस्थापक एवं अध्यक्ष
श्री हिंदू धर्म वैदिक एजुकेशन फाउंडेशन

www.shdvef.com

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय: ॥